वैदिक पृष्ठभूमि में शिक्षक और शिष्य

वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'
अध्यक्ष - राष्ट्रीय आयुर्वेद परिषद
जयपुर

व्यास अथवा गुरु पूर्णिमा के पश्चात् पाँच सितम्बर को 'शिक्षक दिवस' मनाया गया। हमारे देश के पूर्व राष्ट्रपति डा. श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के जन्म दिन को शिक्षक दिवस के रूप में मनाया जाता है। गुरु या शिक्षक से सम्बन्धी कुछ जानकारी यहाँ सामान्य पाठकों के हेतु प्रस्तुत कर रहा हूँ-

पाणिनीय शिक्षा के अनुसार गुरु चार प्रकार के हैं

1. अध्यापक
2, श्रोत्रिय
3. प्रवक्ता
४. आचार्य

1. अध्यापक - लौकिक या वैज्ञानिक साहित्य का अध्यापन कराने वाले गुरु अध्यापक कहलाते थे। माणवक आदि बालकक्षा को भी ये ही पढाते थे। इन्हें ही आगे चलकर उपाध्याय कहा जाने लगा। अमरकोष में वेद को पढ़ाने वाले को अध्यापक एवं उपाध्याय कहा है। मनुस्मृति में उपाध्याय की परिभाषा इस प्रकार दी है-

एकानेकां तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स स्मृतः।।

2. श्रोत्रिय - धन्व या वेद की शाखाओं को कण्ठ करने वाले विद्वान् गुरु श्रोत्रिय कहलाते थे। इनका सम्बन्ध विशेषत: वेद के पारायण से था। वे स्वयं कण्ठ करने के पश्चात् विद्यार्थियों को कण्ठ कराते थे। भिन्न भिन्न पाठ कण्ठ कराने के लिये भिन्न भिन्न श्रोत्रिय होते थे। एक परिभाषा यह भी मिलती है-

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते।

विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते ।।

3. प्रवक्ता – वेद और वेदाङ्गों का अर्थसहित अध्यापन कराने वाले गुरु प्रवक्ता कहे जाते थे। इन्हें आख्याता या व्याख्याता भी कहा जाता था। मनुस्मृति के अध्याय चार में कहा गया कि प्रवक्ता, आचार्य, गुरु और माता-पिता को सदा प्रणाम करना चाहिये और इनके आदेशों का सदैव पालन करना चाहिये। ये सभी पूजनीय होते हैं।

5. आचार्य – आचार का आदर्श स्थापित करने वाले शिक्षक आचार्य कहलाते थे। कोरे विचार के प्रचार से आचार संघठित नहीं होता। समाज का प्रकृत सुधार चरित्र के सुधार में ही हैं। ये आचार्य आचरण या चरित्र पर उचित रीति से बहुत जोर देते थे। अतः आचार्य को परमात्मा कहा गया – 'आचार्यः ब्रह्मणो मूर्तिः' ।

शिक्षकों में आचार्य का स्थान सर्वोच्च कहा गया है। शिष्य का उपनयन कराने का अधिकार आचार्य को ही था। इसके पश्चात् वह छात्र अन्तेवासी कहलाता था। ये शिष्य आचार्य के नाम के अनुसार नाम पाते थे, जैसे तित्तिर आचार्य के शिष्य तैत्तिरीय, पाणिनि के शिष्य पाणिनीय आदि। मनुस्मृति में स्पष्ट कहा गया कि जो उपनयन के पश्चात् अपने शिष्य को सभी प्रकार की शिक्षा प्रदान करे और वेद पढ़ाये उसे ही आचार्य कहा जा सकता है-

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः ।

सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते।। -मनुस्मृति 2-140

चरकसंहिता के विमानस्थान अध्याय 08 में आचार्य की योग्यता का इस प्रकार उल्लेख किया गया है- निर्भ्रान्त शास्त्रज्ञानी, अनुभवी, कर्मकुशल, अनुकूल, सदाचारी, सिद्धहस्त, उपयुक्त साधन सामग्री वाला, आँख-कान आदि सभी इन्द्रियों से युक्त, लोगों की प्रकृति को समझने वाला, युक्तिज्ञ, व्यवहारकुशल, विविध शास्त्रों के अध्ययन से परिष्कृत ज्ञान वाला, अहङ्काररहित, दूसरे के गुणों पर दोषारोपण न करने वाला, क्रोध न करने वाला, कष्टसहिष्णु, शिष्यवत्सल और अपने विषय को भली भाँति समझाने वाला -इन गुणों से युक्त आचार्य एक अच्छे शिष्य को शीघ्र ही ज्ञान एवं गुणों से भरपूर कर देता है, जैसे उपयुक्त ऋतु का बादल एक अच्छे खेत को धान्यसम्पत्ति से भर देता है। आचार्य कश्यप ने तो यह भी कहा है कि जो शिष्य के गुण निर्दिष्ट किये गये हैं, वे आचार्य में भी होने चाहिये। तब ही वह शिष्य को तद्गुणों से युक्त कर सकता है।

आचार्य में अनुभव को अभिव्यक्त करने का सामर्थ्य होना आवश्यक है। अनुभूति को शब्दों में प्रस्तुत करने का कौशल ही अभिव्यक्ति है, यह अनुभूति का शब्दिक परिष्कार है। अभिव्यक्ति में अभि उपसर्ग है तथा व्यक्ति शब्द किसी प्रकट दृष्टिगोचर सत्ता का द्योतक है।

इसी प्रकार शिष्यों के गुणों का भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। आचार्य चरक करते हैं कि विनीत अहङ्काररहित, शील–शौच–सदाचार आदि गुणों से जो युक्त हो, पढ़ने में जिसकी उत्कट इच्छा हो, अर्थ को समझने और कर्म को देखने में जो दत्तचित्त हो, लोभी एवं आलसी नहीं हो, प्राणिमात्र का हितैषी हो, आचार्यों के सब उपदेशों और आज्ञाओं का पालन करने वाला हो, गुरुभक्त हो–ऐसे गुणवान् शिष्य को अध्यापन के योग्य माना गया है। पढ़ाने योग्य छात्र को पढ़ाते हुये आचार्य शास्त्रदृढता, अभिधानसौष्ठव, अर्थविज्ञान और वचनशक्तिरूप यथोक्त अध्यापन के फल प्राप्त करता है तथा अन्य अनुक्त श्रेयस्कर गुणों से भी शिष्य एवं अपने को युक्त करता है।

प्राचीनकाल में गुरुकुलों में पढ़ने वाले शिष्य दो प्रकार के होते थे – दण्डमाणव और अन्तेवासी। दण्डमाणव को माणव भी कहते थे। पलाश (ढाक) का दण्डधारण करने के कारण वे दण्डमाणव कहे जाते थे। ये बालक प्रारम्भिक शिक्षा पाते थे। इसके बाद जब वेद पढ़ने का समय आता तब आचार्य माणव का उपनयन संस्कार करते थे। उस समय मनसा वाचा कर्मणा आचार्य के समीप पहुँचा हुआ वह ब्रह्मचारी 'अन्तेवासी' पदवी को धारण करता था।

पूरा अध्ययन करने के पश्चात् आचार्य के द्वारा जो उत्तरानुशासन के रूप में उपदेश दिया जाता था, उन सबका आयुर्वेद के संहिताग्रन्थों में भी विस्तार से वर्णन किया गया है। चरकसंहिता में वर्णित है कि – 'कर्म में सिद्धि, अर्थार्जन में सफलता, कीर्तिलाभ और मृत्यु के बाद स्वर्ग की इच्छा रखते हो, तो तुमको गो–ब्राह्मणों पर विशेष दृष्टि रखते हुये प्राणिमात्र के कल्याण की कामना करनी चाहिये। अपनी पूर्ण शक्ति के साथ रोगियों को आरोग्य देने का प्रयत्न करना चाहिये । सदा सत्य और सुसंस्कृत वेशभूषा में तुम्हें रहना होगा। पापाचरण और पापियों का संग नहीं करना चाहिये। बातचीत या भाषण में कोमल, धर्मसंगत, सत्य, हितकर और परिमित शब्दों का व्यवहार करना चाहिये। ज्ञानोन्नति के साधनों को सदा जुटाते रहना चाहिये।

एक बात आचार्य ने बडे महत्व की कही है, उस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है – **'विज्ञानवतापि च नात्यर्थमात्मनो ज्ञाने विकत्थितव्यम्, आप्तादपि हि विकत्थमानादत्यर्थमुद्विजन्त्येके'** अर्थात् पण्डित

होते हुए भी (पूर्ण जानकारी रखने पर भी) अपने ज्ञान के विषय में अधिक डींगें नहीं मारनी चाहिये, क्योंकि आत्मप्रशंसा करने वाले आप्त (प्रतिष्ठित) पुरुष से भी लोग बहुत घबराने या ऊबने लगते हैं।

आचार्य सुश्रुत निर्दिष्ट करते हैं कि एक चिकित्सक को गुरु, साधु-संन्यासी, सत्पुरुष अनाथ और दूर से चल कर आये हुये लोगों की अपने परिवार के सदस्यों की भाँति पूर्ण आत्मीयता के साथ विशेष ध्यान देकर चिकित्सा करनी चाहिये। परन्तु हिंसक, आचारभ्रष्ट और पापात्माओं की चिकित्सा नहीं करनी चाहिये।

चिकित्सा हेतु प्रवृत्त होने वाले स्नातक को उपदेश के रूप में आचार्य कश्यप काश्यपसंहिता में लिखते हैं कि - गुरु की आज्ञा और राजाज्ञा ले कर ही चिकित्सा कर्म में प्रवृत्त होना चाहिये। मरणासन्न और असाध्य रोगी की चिकित्सा न करे। सब प्रकार की ओषधियों का हमेशा संग्रह रखे। रोगी के निश्चित मरण के लक्षणों को देख कर भी उसे यह न बतलाये, अपितु उसे ढ़ाढस ही दें। राय लेने की दृष्टि से बुलाये गये अन्य चिकित्सकों के साथ विरोध न करे, उनके साथ मिल कर अच्छी तरह विचार-विमर्श कर रोगी की औषध-व्यवस्था करे । रोगी के हित को सर्वोपरि मान कर ही व्यवहार करना चाहिये।

ये सब दीक्षान्तोपयोगी भाषण की बाते हैं, जिन्हें कुलपति स्नातकों को सावधानीपूर्वक सुनाया करते थे। विद्यासमाप्ति के पश्चात् कर्मक्षेत्र में पदार्पण करने वाले स्नातक की एक विशेष वैदिक पृष्ठभूमि है। स्नातक का शाब्दिक अर्थ है - 'स्नान किया हुआ (स्नाक्त+कन्) । यह शब्द वैदिक युग में विद्यार्थी जीवन के एक विशेष सन्दर्भ में किये जाने वाले स्नान से जुड़ा है। उपनयन संस्कार के समय प्रारम्भ हुये वेदाध्ययन सत्र और स्नातकव्रत की समाप्ति पर एक विशिष्ट स्नान भी अनिवार्य था, जिससे विद्यार्थी को स्नातक कहलाने का अधिकार प्राप्त होता था। इस स्नान की एक विशिष्ट विधि पारस्कर गृह्यसूत्र (२१६) में वर्णित है - सुगन्धित औषधयुक्त जल से भरे आठ घड़े वेदी के उत्तर में रखे जाते थे। मन्त्रोच्चारण सहित विद्यार्थी को एक घड़े के जल से स्नान कराया जाता था। इसके बाद उस पर लगे निषेध समाप्त किये जाते थे। वह जटा, नख कटवाता था, फिर गूलर की लकड़ी से दाँतुन कर शेष घड़ों के जल से स्नान करता था। आचार्य द्वारा प्रदत्त पीताम्बर धारण कर चन्दनादि का अनुलेपन एवं अंजन लगा कर 'ओम् रोचिष्णुरसि' मन्त्र के साथ उसे दर्पण दिखाया जाता था।

कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय आरण्यक के सप्तम, अष्टम और नवम प्रपाठक 'तैत्तिरीयोपनिषद्' के नाम से जाने जाते हैं। इनमें सप्तम प्रपाठक को 'शिक्षावल्ली' कहते हैं। इस शिक्षावल्ली के एकादश अनुवाक में वेदाध्ययन के अनन्तर शिष्य स्नातक के लिये आचार्य का दीक्षान्त भाषण है। उसका पद्यानुवाद प्रस्तुत है-

धर्मपरायण सत्यव्रती हो, कभी न हो स्वाध्याय प्रमाद।
जिनसे हो कल्याण तुम्हारा, उन बातों को रखना याद।।
बढता जाये वैभव तेरा, विद्वानों से कर संवाद।
कर्म माङ्गलिक जो यश देते, उन्हें भूल मत, कर न विवाद।।

मात पिता गुरु और अतिथि को, सदा मानना देव समान।
कर्म अनिन्दित करते रहना, सदा दूसरों का रख ध्यान।।
कर उपासना शुभाचरण की, सदाचरण है सुख की खान।
शिष्य! सदा ये पालन करना, जिससे हो जीवन उत्थान।।

प्रवचन सुनना ध्यान लगा कर, जो प्रवचन दे मनुज महान।
श्रद्धा अरु विश्वास धार कर, समझ सकल सर्वोत्तम ज्ञान।।
भय लज्जा ऐश्वर्य आदि से, उभरे पुनः अतुल अवदान।
बढ़े मित्रता मिटे शत्रुता, तब प्रशस्त होगी पहचान।।

संशय जब हो कर्म करन में, छा जाये जब भी अज्ञान।
धर्मकार्म से विचलित हो मन, पथ की ना हो जब पहचान।।
शान्त सरल कर्त्तव्यपरायण, जो हो निपुण योग्य मतिमान्।
उनके पास चले जाना तुम, समाधान से हो कल्याण।।

आदेश यही उपदेश यही, वेद उपनिषद् का यह सार।
यही हमारी शिक्षा सुख कर, कभी न देना वत्स! विसार।।
जो आचरण किया सुजनों ने, वही आचरण हिय में धार।
दुविधायें दल पथ पर बढ़ चल, कल अवश्य होगी जयकार।।